International Journal of Applied Research 2017; 3(7): 171-175

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(7): 171-175
www.allresearchjournal.com
Received: 28-05-2017
Accepted: 30-06-2017

अंशुला मिश्रा
अतिथि विद्वान, हिन्दी, शासकीय इन्दिरा गाँधी गृह विज्ञान कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.), भारत

Correspondence
अंशुला मिश्रा
अतिथि विद्वान, हिन्दी, शासकीय इन्दिरा गाँधी गृह विज्ञान कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.), भारत

सुभद्रा कुमारी चौहान की समकालीन परिस्थितिया

अंशुला मिश्रा

सारांश
सुभद्रा कुमारी चौहान आधुनिक काल की साहित्यिक सृजेता थी। समाज अन्धविश्वास और रूढ़ियों से बोझिल था। स्त्रियों को विलास की सामग्री समझा जाता था। पुरुष वर्ग भी विलासिता में डूबा हुआ था। "अर्थाभाव के कारण समाज का जीवन–स्तर इतना निम्न हो गया कि उसके लिए जठराग्नि तक को शान्त करना भी कठिन हो रहा था। उदर–पूर्ति के लिए न जाने उन्हें किन–किन दुर्गुणों की आड़ लेनी पड़ती थी। ..... किसान दुखी था, मजदूर दुखी था और दुखी था प्रत्येक कारीगर, जिसके हाथों से उसका उद्योग–धन्धा छीना जा चुका था। विपन्न समाज का पराभव होना ही था, जिसके परिणामस्वरूप बालविवाह, दहेजप्रथा, जातिप्रथा, छुआछूत, अन्धविश्वास आदि अनेक सामाजिक कुरीतियों ने समाज को जर्जर बना दिया था।" [1]
उन्होंने उनकी सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए सुधारवादी कविताएँ लिखीं। इसके अतिरिक्त ब्रह्म समाज, आर्यसमाज आदि के द्वारा भी समाज–सुधार को बल मिला। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने "सत्यार्थ प्रकाश" लिखकर उसमें हिन्दू धर्म की बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। अंग्रेजी शिक्षा तथा संस्कृति से भी सामाजिक सुधार की सम्भावनाएँ बढ़ी और भारतीयों में नयी चेतना का स्फुरण हुआ।
देश की आर्थिक स्थिति दयनीय होने पर भी ब्रिटिश सरकार ने रेल, तार, डाक आदि को प्रोत्साहित करके भारतीय खजाने को खाली कर दिया। इसके साथ ही चीन, तिब्बत, अफगान आदि की लड़ाइयों का खर्च भी भारतीय कोष से चुकाया जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि जनता पर आर्थिक बोझ लद गया। उनके कष्टसाध्य जीवन को देखकर भी ब्रिटिश सरकार का दिल पसीजने वाला नहीं था। इन्हीं आर्थिक विपत्तियों ने भारतीयों को संगठित होकर विदेशी शासन को समाप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया।

कुट शब्दः सुभद्रा कुमारी चौहान, समकालीन, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ

प्रस्तावना
सुभद्रा कुमारी चौहान की असाधारण प्रतिभा ने हिन्दी साहित्य को गद्य और पद्य के रूप में उल्लेखनीय योगदान किया है। इसका नवीन परिचय उनके यश को व्यापक बनाता है। अपने जीवन काल में ही उन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व के बल पर यथेष्ट कीर्ति और सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय सराहना प्राप्त कर ली थी। जिस समय उन्होंने अपनी सहज प्रवाहिनी काव्य धारा से अपने वाणी का श्रृंगार करना प्रारम्भ किया वह क्षण सुभद्रा जी की समकालीन परिस्थितियों के परम सात्विक उत्साह का था। सामाजिक परिवेश में इनकी कविता में नारी सुलभ, अजस्र सहानुभूति और नैसर्गिक करुणा से सम्पृक्त वीर रस का स्वर मात्र ही नहीं भरा बल्कि समसामयिक परिस्थितियों से सम्बलित गर्व और गौरव भरा स्वर निसृत हुआ था।
नारी हृदय शीर्षक कहानी के सन्दर्भ में उनका कथन है कि मेरे स्वामी "परमात्मा ने स्त्री–जाति के हृदय में इतना विश्वास, इतनी कोमलता और इतना प्रेम शायद इसीलिए भर दिया है कि वह पग–पग पर ठुकराई जावे। जिस देवता के चरणों पर हम अपना सर्वस्व चढ़ाकर, केवल उसकी कृपा'दृष्टि की भिखारिन बनती हैं, वही हमारी तरफ आँख उठाकर देखने में अपना अपमान समझता है। माना कि मैं समाज की आँखों में आपकी कोई नहीं। किन्तु एक बार अपना हृदय तो टटोलिए और सच बतलाइए क्या मैं आपकी कोई नहीं हूँ। समाज के सामने अग्नि की साक्षी देकर हम विवाह–सूत्र में अवश्य नहीं बँधे, किन्तु शिवजी की मूर्ति के सामने भगवान् शंकर को साक्षी बनाकर क्या आपने मुझे नहीं अपनाया था? यह बात गलत तो नहीं है। मैं जानती हूँ कि आप यदि मुझसे बिलकुल न बोलना चाहें, तब भी मैं आपका कुछ नहीं कर सकती। यदि किसी से कुछ कहने भी जाऊँ तो सिवा अपमान और तिरस्कार के मुझे क्या मिलेगा? आपको तो कोई कुछ भी न कहेगा, आप फिर भी समाज में सिर ऊँचा करके बैठ सकेंगे। [2]
इसी प्रकार गौरी नामक कहानी में सामाजिक मूल्यों की स्थापना करते हुए तद्युगीन परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि – "गौरी अपराधिनी की भाँति, माता–पिता दोनों की दृष्टि से बचती हुई, पिता के लिए चाय तैयार कर रही थी।

उसे ऐसा लग रहा था कि पिता की सारी कठिनाइयों की जड़ वही है। न वह होती और न पिता को उसके विवाह की चिंता में इस प्रकार स्थान–स्थान घूमना पड़ता। वह मुँह खोलकर किस प्रकार कह दे कि उसके विवाह के लिए इतनी अधिक परेशानी उठाने की आवश्यकता नहीं। माता–पिता चाहे जिसके साथ उसकी शादी कर दें, वह सुखी रहेगी। न करें तो भी वह सुखी है। जब विवाह के लिए उसे जरा भी चिंता नहीं, तब माता–पिता इतने परेशान क्यों रहते हैं–गौरी यही न समझ पाती थी। कभी–कभी वह सोचती, क्या मैं माता–पिता को इतनी भारी हो गई हूँ? रात–दिन सिवा विवाह के उन्हें और कुछ सूझता नहीं। आत्मग्लानि और क्षोभ से गौरी का रोम–रोम व्यथित हो उठता। उसे ऐसा लगता कि धरती फटे और वह समा जाए, किन्तु ऐसा कभी न हुआ। [3]

इस युग में परिवर्तन की प्रक्रिया तीव्र हो गयी थी। समाज पहले की तरह गतानुगतिक बना हुआ था। "कई सामाजिक प्रथाएँ शक्तिहीन हो गयी थीं, परन्तु अभी छुआछूत, बालविवाह, विधवा–विवाह निषेध, स्त्री–शिक्षा का अभाव, वर्ग–भेद, पर्दे की प्रथा, अन्धविश्वास, समुद्र–यात्रा का निषेध, रहन–सहन के प्रतिबन्ध आदि अनेक कुरीतियाँ थीं जो घुन की तरह लगी हुई थी।" [4]

1600 ई. में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना व्यापार की दृष्टि से हुई थी। अंग्रेजों के पूर्व पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी आदि अनेक जातियाँ भारत में आयीं। इन जातियों ने कला, धर्म, संस्कृति, सभ्यता आदि से हमारे देश को प्रभावित किया। किन्तु कुछ समय बाद सभी जातियाँ स्वदेश लौट गयीं, केवल अंग्रेज और फ्रांसीसी भारत में टिके रहे। तीन–तीन कर्नाटक युद्धों के परिणामस्वरूप फ्रांसीसियों की शक्ति क्षीण हो गयी और उनके प्रमुख व्यापारिक केन्द्र पाण्डुचेरी पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। अन्त में फ्रांसीसियों को विवश होकर भारत से बाहर जाना पड़ा।

अंग्रेज कम्पनी धीरे–धीरे व्यापारिक कम्पनी न होकर राजनीतिक कम्पनी के रूप में उभरने लगी। अंग्रेजों ने भारतीयों की फूट का लाभ उठाया। 1757 के प्लासी और 1764 ई. के वक्सर के युद्ध से उनके लिए भारत–विजय का मार्ग प्रशस्त हो गया। 1818 ई. में अन्तिम अंग्रेज और मराठा युद्ध हुआ जिससे उनका मनोबल और बढ़ा। दिनकर ने लिखा है – "भारत–विजय में अंग्रेजों को सौ साल लग गये। यहाँ के रुपयों और यहीं के आदमियों को लेकर अंग्रेजों ने भारत में छोटी–बड़ी 111 लड़ाईयाँ लड़ी, तब जाकर कहीं भारत उनके अधीन हुआ।" [5]

अंग्रेजों के बढ़ते हुए अत्याचार और अन्याय का प्रबल प्रतिरोध हो रहा था। लार्ड डलहौजी की राज्य–हड़प की नीति ने भारतीय नरेशों में विद्रोह की ज्वाला फैला दी। इसके साथ ही अंग्रेजों के द्वारा भारतीयों के प्रति किया गया दुर्व्यवहार 1857 ई. के स्वतंत्रता–संग्राम के रूप में फूट पड़ा। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, कुँअरसिंह, नाना साहब तथा अन्य क्रान्तिकारी नेताओं ने स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व किया। [6] किन्तु ब्रिटिश सरकार ने क्रान्तिकारियों का निर्ममतापूर्वक दमन किया। हमारे देश में यह महान् क्रान्ति थी जिसमें राजा से लेकर रंक तक सब साथ थे और सभी इस भावना से उठ खड़े हुए थे कि हमें विदेशी शासन को उखाड़ फेंकना है। [7] इसमें जाति–सम्प्रदाय आदि का भेदभाव तनिक भी नहीं था।

1857 ई. के स्वतंत्रता–संग्राम के बाद भारत का शासन अंग्रेज कम्पनी के हाथों से निकलकर ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथ में आ गया। महारानी विक्टोरिया ने उनकी अभ्युन्नति के लिए आश्वासन दिये और भारतीय नरेशों के छिने हुए राज्य वापस लौटा दिये। परन्तु कालान्तर में महारानी जी की घोषणा मृगतृष्णा सिद्ध हुई और भारतीयों का क्षोभ पुनः बढ़ने लगा। सन् 1877 ई. में दिल्ली में एक सम्मेलन हुआ जिसमें देश के गणमान्य नागरिक सम्मिलित हुए। बंगाल की इण्डियन एसोसिएशन के संस्थापक श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने प्रस्ताव रखा कि एकदेशव्यापी राजनीतिक संगठन बनाया जाय। सन् 1883 ई. में कलकत्ता में राजनीतिक परिषद् की आयोजना की गयी जिसमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा आनन्दमोहन बसु भी उपस्थित थे। इसके दूसरे वर्ष कलकत्ता में ही अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् की बैठक हुई जिसमें अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना करने की प्रेरणा मिली। सन् 1885 ई. में ए. ओ. ह्यूम के प्रयत्नों से अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य राजनीतिक तथा सामाजिक पुनरुत्थान की भावना थी। समय–समय पर इसका अधिवेश न होता था, जिसमें आवश्यक सुधार तथा ध्येय निश्चित किया जाता था।

सन् 1892 ई. में दादाभाई नौरोजी ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य चुने गये। 1896 ई. में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। उस समय अंग्रेजों की शोषणवादी नीति से भारतीय जनता त्रस्त थी। 1898 में लार्ड कर्जन और प्लेग की बीमारी दोनों का साथ–साथ पदार्पण हुआ। 1904 ई. में कर्जन ने विश्वविद्यालय सम्बन्धी कानून पारित किया जो देशवासियों के लिए घातक सिद्ध हुआ। लार्ड कर्जन का सबसे निंदनीय कार्य 1905 ई. में बंगाल का विभाजन था। [8] पूरे देश में इस घृणित कार्य की निन्दा की गयी तथा उसके विरोध में जुलूस और नारे का प्रदर्शन हुआ।

कांग्रेस दल के राष्ट्रीय नेताओं ने ब्रिटिश सरकार से अपनी मांगे स्वीकार करने के लिए आन्दोलन शुरू कर दिया। इससे पहले फारस, टर्की, मिस्र आदि देशों में स्वतंत्रता के लिए घोर क्रान्तियाँ हो चुकी थीं। 1904 ई. में जापान ने रूस की सेनाओं को परास्त कर दिया। इन सबका सम्मिलित प्रभाव भारतवासियों पर पड़ा और वे अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत हो गये। सरकार ने क्रान्तिकारियों को पकड़वाने का व्यापक अभियान चलाया। "वन्देमातरम्" गीत पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। "युगान्तर", "सन्ध्या" तथा "वन्देमातरम्" आदि पत्रों के सम्पादक बन्दी बना लिये गये। [9] 1906 ई. में दादाभाई नौरोजी ने "स्वराज्य" शब्द का प्रयोग किया। 1907 ई. में प्रवास सम्बन्धी बिल, 1908 ई. में सभाबन्दी कानून और प्रेस एक्ट के कारण जनता में खलबली मच गयी। 1907 ई. में ही सूरत में कांग्रेस अधिवेशन में दो दल बन गये–नरम दल तथा गरम दल। नरम दल में लाला लाजपत राय, तिलक तथा विपिनचन्द्र पाल थे। नरम दलवालों में दादाभाई नौरोजी, गोपालकृष्ण गोखले तथा अन्य राजनीतिक नेता थे।

देश में राष्ट्रीय भावना का उत्तरोत्तर विकास होता गया। सन् 1913 ई. के "गदर आन्दोलन" ने अंग्रेजों को भयाक्रान्त कर दिया। राष्ट्रीय नेताओं ने हिंसा की आग सारे देश में फैला दी। अंग्रेजों ने भारतीयों को शान्त करने के लिए बंगभंग रद्द कर दिया। 1915 ई. में गोपालकृष्ण गोखले की मृत्यु हो गयी जिससे देशवासियों को गहरा धक्का लगा। 1916 ई. में लीग और कांग्रेस दोनों दलों में समझौता हो गया तथा दोनों ने मिलकर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आन्दोलन जारी रखा।

सन् 1914 ई. में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया तथा 1918 ई. तक चलता रहा। इस विश्वयुद्ध में अंग्रेजों ने भारतीयों से सहायता माँगी और बदले में स्वशासन का आश्वासन दिया। किन्तु युद्ध के बाद उन्होंने भारतीयों की आशा पर पानी फेर दिया। राष्ट्रीय नेताओं ने अंग्रेजों की इस कूटनीति का कड़ा प्रतिरोध किया। 1916 ई. में तिलक ने आयरलैण्ड से प्रेरणा लेकर पूना में होमरूल लीग की स्थापना की। उसी वर्ष लार्ड चेम्सफोर्ड का आगमन हुआ जिसका राष्ट्रीय नेताओं ने विरोध किया। 1918 ई. में माटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित होने पर भारतीयों में क्षोभ उत्पन्न हुआ। 1919 ई. में रौलट एक्ट पारित हुआ जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को सन्देहात्मक स्थिति में मुकदमा चलाये बिना सरकार गिरफ्तार कर सकती थी। इस एक्ट के विरोध में गाँधी जी ने सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया। स्थान–स्थान पर दंगे और सभाएँ हुई। उसी के विरोध में 13 अप्रैल 1919 ई. को जलियावाले बाग में शान्तिपूर्ण सभा का आयोजन किया गया था। जनरल डायर ने नृशंसतापूर्वक उस पर गोली चलवाकर अपनी क्रूरता का परिचय

दिया। इसकी प्रतिक्रिया में गाँधी जी ने "केसरे हिन्द" तथा रवीन्द्रनाथ ने "सर" की उपाधि अंग्रेजी सरकार को वापस लौटा दी।

इस प्रकार सन् 1900 ई. के बाद भारत की राजनीतिक परिस्थितियों में काफी उथल–पुथल दिखायी देती है। बंगाल का विभाजन, प्रथम विश्वयुद्ध, 1917 की रूसी क्रान्ति, जलियावाले बाग का हत्याकाण्ड, अंग्रेजी सरकार का निर्ममतापूर्वक दमन, साम्प्रदायिकता, स्वतंत्रता–प्राप्ति की प्रबल इच्छा आदि प्रमुख घटनाएँ राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर अभिनीत हो रही थीं। राष्ट्रीय रंगमंच पर अभिनीत होने वाले नाटक के प्रधान–पात्र गांधी जी थे, प्रधान संस्था थी कांग्रेस, प्रधान नीति थी सत्य–अहिंसा और खलनायक थे अंग्रेज शासक। [10] गाँधी जी ने देश में व्यापक रूप से राष्ट्रीयता का प्रसार किया तथा स्वतंत्रता संग्राम की महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इन सभी घटनाओं का साहित्य पर अमिट प्रभाव दिखाई देता है।

अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारत देश अत्यन्त समृद्ध था और उसका तैयार माल यूरोपीय देशों में बिकने के लिए जाता था, किन्तु शोषण के चक्र में पड़कर वही याचक बन गया। वहाँ से कच्चा माल विदेशों को जाता था और वहाँ से तैयार माल भारतीय बाजारों में ऊँचे दर पर बिकता था। सन् 1867 ई. में दादाभाई नौरोजी ने यह स्पष्ट किया कि भारत में प्रत्येक व्यक्ति की वार्षिक औसत आय 40 शिलिंग अथवा बीस रुपया है। [11] सन् 1901 ई. में लार्ड कर्जन ने कहा था कि प्रत्येक भारतीय की औसत आय लगभग तीस रुपये है।

अंग्रेजों की शोषण–नीति का सबसे बुरा प्रभाव भारतीय कृषकों पर पड़ा। कठिन परिश्रम करने के बाद भी उन्हें भूखा रहना पड़ता था। बार–बार सामान्य अनावृष्टि के कारण उन्हें लगान देना भी मुश्किल हो जाता था। अन्य जनता की आर्थिक दशा इतनी खराब हो चुकी थी कि अकस्मात् अन्न की कमी हो जाने पर वह खरीदने में अक्षम थी। [12] व्यापारी वर्ग उस समय ऊँचे दामों में अनाज बेंचकर अपनी तिजोरी भरते थे।

अंग्रेजों के शोषणवादी नीति के कारण देश की आर्थिक दशा अत्यन्त खराब हो गयी। अंग्रेज यहाँ से कच्चा माल सस्ते दामों में खरीदकर अपने देश ले जाते थे और वहाँ से तैयार माल को यहाँ पर ऊँचे दामों में बेचते थे। देश का धन निरन्तर बाहर जाने से भारत निर्धन हो गया। ऊपर से एक–पर–एक पड़ने वाले दुर्भिक्षों ने देशवासियों की कमर तोड़ दी। औद्योगिक विकास होने पर भी किसानों की आर्थिक दशा खराब थी। नवीन कृषि प्रणाली विकसित होने के बावजूद वह उनके सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण के अनुकूल न थी। उसी प्रकार कारखानों में काम करने वाले मजदूर अपने मिल–मालिकों से संतुष्ट न थे। भोली–भाली जनता के उत्पीड़न और शोषण में कोई अन्तर न आया। अधिकतर लोगों का जीवन स्तर निम्न श्रेणी का था। [13] अन्न–उत्पादक किसान अब भी भरपेट भोजन के लिए तरसता था और उसका रहन–सहन करुणाजनक था।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् सरकारी दमन चक्र ने गरीबों और मजदूरों को कुचल डाला। सामाजिक और धार्मिक कुरीतियाँ उन्हें दूसरी ओर जर्जर बना रही थीं। उसी समय स्वदेशी आन्दोलन जोरों पर था। गाँधी जी ने चरखा और खादी पर आधारित एक आर्थिक योजना प्रस्तुत की। 1900 ई. में देश में 193 सूती मिलें थीं जिनमें लोगों को काम मिलता था। 1901 ई. में गन्ने के सुधार के लिए गवेषणा केन्द्र खोला गया। 1904 ई. में भारत में सर्वप्रथम पोर्टलैण्ड सीमेंट कारखाना प्रारम्भ हुआ। 1907 ई. में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी की स्थापना हुई।

देश की आर्थिक परिस्थिति ने राजनीतिक गतिविधियों को तेजी से प्रभावित किया। आर्थिक शोषण के विरुद्ध राष्ट्रीय नेताओं ने जनता को अंग्रेजों से असहयोग करना सिखाया। खेड़ा जिले में किसानों की फसल नष्ट हो जाने पर सरकार ने लगान माफ नहीं किया। अन्त में गाँधी जी के प्रयासों से किसानों को कर मुक्त किया गया। बंगाल में 'टेनेन्सीएक्ट' के अनुसार चम्पारन में नील की खेती करने के लिए कृषकों को बाध्य किया गया। किन्तु जब अंग्रेजों को कोई लाभ नहीं हुआ तो नील का व्यवसाय बन्द कर दिया गया। उन्होंने आर्थिक क्षति की पूर्ति के लिए किसानों को सताया। इस प्रकार भारतीयों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। अंग्रेजी शासक देश की पूँजी बटोरने में लगे हुए थे।

सामाजिक तथा आर्थिक दशा के समान धार्मिक परिस्थिति भी चिन्ताजनक थी। जीवन के अन्य क्षेत्रों में प्रगति के बावजूद भी भारतीय जनता मूढ़ बनी हुई थी। धर्म के नाम पर अनेक पाखण्ड फैले हुए थे। रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों के कारण लोगों का सामाजिक स्तर काफी नीचे गिर चुका था जिसकी अभिव्यक्ति तत्कालीन भारतेन्दुयुगीन साहित्य में मिलती है। अनेक सुधारवादी आन्दोलनों के बावजूद भी जनता लकीर की फकीर बनी हुई थी। आपसी मतभेदों के कारण नैतिक स्तर निम्न हो चुका था। धर्माडम्बर, पाखण्ड, अन्धविश्वास तथा प्राचीन रूढ़ियों से लोगों का जीवन पंगु हो गया।

धर्म के नाम से होने वाले अत्याचार और पाखण्ड से पृथ्वी बोझिल हो रही थी। अवसर का लाभ उठाकर अंग्रेज पादरी ईसाई धर्म का प्रचार कर रहे थे। वे हिन्दू तथा मुसलमान दोनों को ईसाई बना रहे थे। और अंग्रेजी शासन की ओर से उन्हें विशेष सुविधा उपलब्ध करा रहे थे। ''डेविडसन नामक अंग्रेज यात्री का कहना है कि आर्थिक दृष्टि से 1843 सन् में हिन्दी प्रदेश वह न रह गया जो अंग्रेजों के आने पर था। .....फलतः हिन्दी भाषा–भाषियों का धार्मिक जीवन किसी नवीन आदर्श से प्रेरित न होकर निस्पन्द पड़ा था।'' [14] कुछ लोगों का मानना है कि अंग्रेजी सभ्यता, संस्कृति ने जहाँ अनेक सुधारों को जन्म दिया, वहीं जान–बूझकर भारतीय धर्मों में साम्प्रदायिक वैमनस्य उत्पन्न किया। [15] इससे धार्मिक पतन हुआ तथा सामाजिक सन्तुलन बिगड़ गया। किन्तु भारतीय मनीषियों ने इस दिशा में सराहनीय प्रयास किया। उन्होंने धार्मिक कुरीतियों को दूर करने के लिए जनता में नयी चेतना पैदा की।

धर्म के नाम पर हो रहे अत्याचार और अन्याय अब भी समाज में छाये हुए थे। वाह्याडम्बर और अन्धविश्वास की पुरानी लीक पर जनता चली जा रही थी। गाँधी जी ने सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में अनेक रचनात्मक कदम उठाये। उन्होंने दासता से मुक्ति पाने के लिए सुधारों को विशेष महत्व दिया। इस दिशा में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि भी क्रियाशील रहे।

द्विवेदी–युग में धर्म की प्रमुखता के कारण, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, बहुदेववाद, व्रत–त्यौहारों का प्राधान्य था। राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों ने देशोत्थान के लिए धर्म में कई परिवर्तन लाने की प्रेरणा दी। [16] अतः एक ओर यदि सामाजिक और धार्मिक अधोगति विद्यमान थी तो दूसरी ओर जनता में सुधार की भावना भी दिखायी दे रही थी।

सुभद्रा कुमारी चौहान के युग में भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद दो भिन्न संस्कृतियों का मेल हुआ, किन्तु पश्चिम का अन्धानुकरण न करके अपनी राष्ट्रीय सांस्कृतिक धरोहर को विशेष महत्व दिया गया। महादेव गोविन्द रानाडे, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, तिलक, एनीबेसेन्ट, अरविन्द घोष, गोपालकृष्ण गोखले आदि ने सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाया। उनके समन्वित प्रयास से राष्ट्रीयता की भावना विकसित हुई। भारतीय नेताओं ने अंग्रेजी शिक्षा का विरोध किया। कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमीशन ने 1917 ई. में रिपोर्ट दी कि अंग्रेजी शिक्षा का भारतीय जीवन से तालमेल नहीं है। किन्तु ''द्विवेदी–युग में स्थापित शिक्षण संस्थाओं में जीवन के सांस्कृतिक पक्ष पर अधिक जोर दिया जाने लगा था। आर्य समाज पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान और भारतीय धर्म तथा दर्शन का समन्वय करके सांस्कृतिक पुनर्निर्माण के कार्य में व्यस्त था। विश्वविद्यालयों में भारतीय संस्कृति, साहित्य और कला का अध्ययन आरम्भ हुआ।'' [17]

सर जगदीश चन्द्र बसु और प्रफुल्लचन्द्र राय ने कई पौराणिक तथ्यों को सत्य सिद्ध किया। नालन्दा, तक्षशिला और विक्रमशिला के आदर्शों का स्मरण किया जाने लगा। भारत माता के गीत के साथ भारतीयों की सांस्कृतिक चेतना पुनः जागृत हो गयी।

इस प्रकार इस युग में सांस्कृतिक चेतना की लहर दौड़ पड़ी। द्विवेदी युगीन कवियों ने सामाजिक सुधार की प्रेरणा देते हुए सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना उत्पन्न की। [18] वस्तुतः इस युग की कविता का सांस्कृतिक पक्ष अत्यन्त सबल है।

साहित्य के क्षेत्र में भी उनके अनेक बन्धु थे। पंडित माखनलाल चतुर्वेदी से उनके सम्बन्ध की कथा ऊपर आ चुकी है। माखनलाल जी के माध्यम से, आगरा में पढ़ाई के दिनों में, गणेशशंकर विद्यार्थी से काका का परिचय हुआ था और इस परिचय ने उनके जीवन को कैसा संस्कार दिया इसकी कथा भी कही जा चुकी है। विद्यार्थीजी के घर पर ही कानपुर में काका का परिचय बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से हुआ था। नवीनजी उनसे उम्र में एकाध साल छोटे थे। समवयस्क होने के कारण दोनों में बहुत जल्दी मित्रता हो गयी। काका की शादी हो जाने के बाद नवीनजी अपने किसी काम से इलाहाबाद आये और वहाँ उनका परिचय माँ से कराया गया। अब समस्या यह हुई कि नवीनजी माँ को क्या कहकर पुकारें ? उम्र में वह उनसे काफी छोटी थीं परन्तु काका के रिश्ते के नाते बड़ी हो जाती थीं। नवीनजी का मन सोलह–सत्रह साल की उस दुबली–पतली लड़की को भाभी का गौरवमय पद देने के लिए तैयार नहीं हो रहा था। तभी एकाएक समस्या का समाधान आप से आप हो गया। पता नहीं बात पहले किसे सूझी, लेकिन ये बालकृष्ण थे और वे सुभद्रा थीं, उनका सम्बन्ध तो सनातन था। अब से नवीनजी माँ पर छोटी बहन जैसी ममता रखते थे। उन्हें जब माँ पर बहुत प्यार आता तो उन्हें बिन्नों या बिन्नों रानी कहकर बुलाते। सन् 43 की बात है, माँ कभी कानपुर गयीं और प्रताप प्रेस में नवीनजी के पास ठहरीं। उनके आगमन से नवीनजी इतने प्रसन्न थे कि वह खुशी उनके भीतर समा नहीं पा रही थी। दोपहर को माँ सो रही थीं। उनके सोते में शायद बिजली चली गयी। जब उनकी आँख खुली तो उन्होंने देखा कि नवीनजी हाथ का पंखा लिये उन्हें झल रहे हैं।

माँ और महादेवीजी का सम्बन्ध भी ऐसी ही गहरी आत्मीयता का सम्बन्ध था। उसका आरम्भ तो क्रास्थवेट स्कूल से ही हुआ था, लेकिन तब कोई नहीं जानता था कि आगे चलकर जीवन में कौन क्या राह पकड़ेगा। अपने बचपन के दिनों को याद करते हुए महादेवी जी क्रास्थवेट स्कूल में माँ के साथ बिताये दिनों के बारे में लिखती हैं, ''एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी, एक पाँचवीं कक्षा की विद्यार्थिन से प्रश्न करती है 'क्या तुम कविता लिखती हो ?' दूसरी ने सिर हिला कर ऐसी अस्वीकृति दी जिसमें हाँ और नहीं तरल होकर एक हो गये थे। प्रश्न करने वाली ने इस स्वीकृति–अस्वीकृति की संधि से खींचकर कहा, 'तुम्हारी क्लास की लड़कियाँ तो कहती हैं कि तुम गणित की कापी तक में कविता लिखती हो। दिखाओ अपनी कापी,' और उत्तर की प्रतीक्षा में समय नष्ट न कर वह कविता लिखने की अपराधिनी को हाथ पकड़कर खींचती हुई उसके कमरे में डेस्क के पास ले गयी। नित्य व्यवहार में आने वाली गणित की कापी को छिपाना संभव नहीं था, अतः उसके साथ अंकों के बीच में अनधिकार सिकुड़कर बैठी हुई तुकबन्दियाँ अनायास पकड़ में आ गयीं। इतना दंड ही पर्याप्त था। पर इससे संतुष्ट न होकर अपराध की अन्वेषिका ने एक हाथ में वह चित्र–विचित्र कॉपी थामी और दूसरे में अभियुक्ता की उँगलियाँ कसकर पकड़ीं और वह हर कमरे में जा–जाकर इस अपराध की सार्वजनिक घोषणा करने लगी।'' [19] लेकिन आठवीं क्लास पास करने के बाद माँ की शादी हो गयी, पढ़ाई छूट गयी। इनकी राजनीति सक्रिय राजनीति रही। उनकी कविता उनके जीवन से बहुत ही सीधे रूप में जुड़ी हुई रही।

एक बार महादेवी जी किसी साहित्यिक आयोजन में जबलपुर आयीं। उनके ठहराने की व्यवस्था किसी बड़े आदमी के घर की गयी थी, लेकिन उन्होंने माँ के साथ उनके टूटे–फूटे घर में ही ठहरना पसन्द किया। सबेरे माँ ने उनसे कहा, 'महादेवी, तुम जरा बैठो, मैं आँगन लीप लूँ तब फिर तुम्हारे साथ बैठूँगी।' महादेवी ने कहा, 'तुम क्या समझती हो, मुझे लीपना नहीं आता ? बहुत अच्छा लीपना जानती हूँ।' माँ बोली, 'तुम जानती होगी पर मेरे समान जल्दी नहीं लीप पाओगी।' महादेवीजी इस बात को क्यों मानतीं, बोलीं, 'अच्छी बात है, मैं एक तरफ से लीपना शुरू करती हूँ और तुम दूसरी तरफ से। देखें कौन जल्दी लीपता है और अच्छा लीपता है।' और दोनों ने आँगन के दो विपरीत कोनों से लीपना शुरू किया। [20]

जबलपुर के साहित्यकारों और साहित्य–प्रेमियों ने सुना कि हमारे शहर में प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा पधारी हैं और सुभद्राजी के घर ठहरी हैं। सबेरे–सबेरे सब लोगों ने दल बनाकर वहाँ धावा बोल दिया और जब हमारे घर पहुँचे तो देखा कि दोनों कवयित्रियाँ पूरे मनोयोग से आँगन लीपने में जुटी हुई हैं।

ऐसे ही माँ एक बार शाम को इलाहाबाद में महादेवीजी के घर पहुँची। उन्होंने ताँगे पर से अपना सामान नहीं उतरवाया और महादेवीजी को बुलाकर उनसे कहा कि 'देखो, इस बार मैं तुम्हारे घर नहीं ठहरूँगी,' और इलाहाबाद के एक अध्यापक कवि का नाम लेकर बोलीं कि 'उनका बहुत आग्रह है, मैं एक बार उनके साथ ठहरूँ तो इस बार मैं वहीं जाऊँगी। चलो तुम भी मेरे साथ चलो, फिर लौट आना।' महादेवी जी बोलीं कि 'अच्छा, चलो मैं भी चलती हूँ। सुना है उनकी पत्नी बहुत बढ़िया कचौरी बनाती हैं। अच्छा है, आज कचौरियाँ खायें।' [21]

शादी के बाद पहली बार पति–पत्नी के जीवन में अब कुछ स्थायित्व आया। काम बहुत मन का था क्योंकि उसके द्वारा जहाँ उनकी साहित्यिक रुचि को अभिव्यक्ति मिलती थी वहीं देशसेवा का भी एक सशक्त माध्यम मिल गया था। दोनों पति–पत्नी मन–प्राण से कांग्रेस का काम करने लगे। सुभद्रा स्त्रियों के बीच जाकर स्वाधीनता संग्राम का सन्देश पहुँचाने लगीं जिसके कितने ही आयाम थे, जैसे स्वदेशी वस्तुओं को अपनाना, पर्दा छोड़ना, छुआछूत की ओर ऊँच–नीच की संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठना। सिमरियावाली रानी की कोठी में हफ्ते में एक बार स्त्रियों की सभा होती थी। स्त्रियाँ बड़े शौक से उसमें आती थीं। उन स्त्रियों में अधिकांश सुभद्रा की समवयसी होती थीं। उन्हें सुभद्रा की बातें सुनना अच्छा लगता था। कोई बात जब सुनी जाती है तो सुननेवाले के लिए उसी समय उसको पूरा–पूरा आत्मसात कर लेना कठिन होता है। लेकिन बात यदि सही हो और कहने वाला अपने श्रोताओं के समझने योग्य परिप्रेक्ष्य में रखकर उसे प्रस्तुत कर सके और श्रोता बातों से पूरी तरह न सही लेकिन बोलनेवाले से सहानुभूति रखकर उसकी बातें सुने तो धीरे–धीरे वह उन बातों का प्रभाव ग्रहण करता ही है। जो स्त्रियाँ सुभद्रा की बातें सुनने आती थीं, सुभद्रा उनसे कई बातों में भिन्न होते हुए भी अन्ततः उन्हीं में से एक थीं। वे पर्दा भले न करती हों पर गृहवधू का शील उनमें भरपूर था, जो उन स्त्रियों के विश्वास को जीतता था। उनकी बातें पूरी तरह मान लेना सन् 20–21 में मध्यवर्ग की उन गृहवधुओं के लिए, जो चादर ओढ़कर और घूँघट निकालकर सभा में आती थीं, थोड़ा कठिन था। लेकिन बहुत कुछ उनके अनजाने ही उनका घूँघट धीरे–धीरे कम होने लगा था। और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तो पर्दा छोड़ने से कहीं आसान काम था, सो वे बिना झिझक करने लगी थीं।

निष्कर्ष

सुभद्रा कुमारी चौहान का सामाजिक जीवन विडम्बनाओं से भरा पड़ा था। राजनीति नारी समाज के लिए दूरस्थ परिलक्षित हो रही थी। आर्थिक दृष्टि से समाज में उथल–पुथल मचा हुआ था। देश गुलामी की जंजीर में जकड़ा था। धार्मिक परिस्थितियाँ निरापद

नहीं थीं। साहित्य और सांस्कृतिक दृष्टि से रचनाकारों में लेखन की लालसा बलवती थी। राष्ट्रीय धारणाओं के प्रतिष्ठापन में सभी रचनाकार समादृत थे। राष्ट्रीय परिधि में गांधी जी का आन्दोलन तीव्रतम था। राष्ट्रीय आदर्श की प्रतिनिधि कवयित्री के रूप में सुभद्रा कुमारी पुरजोर रूप से झंडा–आन्दोलन संगठन का बागडोर सभाल चुकी थी। राष्ट्रीय क्षितिज पर सुभद्रा जी का प्रभाव परिलक्षित होने लगा था।

सन्दर्भ

1. हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृष्ठ 216, डॉ. विद्यानाथ गुप्त.
2. नारी हृदय तथा अन्य कहानियाँ, पृष्ठ 22, सुभद्राकुमारी चौहान.
3. वही, पृष्ठ 24.
4. द्विवेदी युगीन काव्य, पृष्ठ 100, डॉ. पूनमचन्द्र तिवारी.
5. संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 406, दिनकर.
6. आधुनिक भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृति इतिहास, पृष्ठ 43, वी.एन. लुणिया.
7. सन् 57 का विप्लव, पृष्ठ 11, बेनी प्रसाद बाजपेयी.
8. आधुनिक भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ 376, वी.एन. लुणिया.
9. क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ 217, डॉ. मन्मथनाथ गुप्त.
10. आधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 139, डॉ. भोलानाथ तिवारी.
11. द्विवेदीयुगीन काव्य, पृष्ठ 76, डॉ. पूनमचन्द्र तिवारी.
12. हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृष्ठ 215, डॉ. विद्यानाथ गुप्त.
13. दी इकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृष्ठ 606, आर.सी. दत्त.
14. आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 9, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय.
15. आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 9, डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान.
16. हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृष्ठ 249, डॉ. विद्यानाथ गुप्त.
17. द्विवेदीयुगीन काव्य, पृष्ठ 119, डॉ. पूनमचन्द्र तिवारी.
18. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 515, डॉ. नगेन्द्र.
19. वही, पृष्ठ 115.
20. मिला तेज से तेज, पृष्ठ 122, सुधा सिंह चौहान.
21. वही, पृष्ठ 124.